विचार का खिलना ही विचार का अंत है; क्योंकि मृत्यु में ही नूतन का अस्तित्व है। उस नूतन का अस्तित्व में आना संभव नहीं, यदि ज्ञात से स्वतंत्रता, ज्ञात से मुक्ति न हो। विचार तो पुराना होता है, वह नये को अस्तित्व में नहीं ला सकता; इसका मृत होना आवश्यक है नये के हो पाने के लिए। जो भी खिलता है, उसका अंत होना ही होना है।

–जे. कृष्णमूर्ति

('कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक' से)

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

वर्ष : 7 अंक : 3
मार्च 2013

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, *वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका*
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

संपादन : विजय छाबड़ा
सहयोग : अरविंद शुक्ल, शक्ति

कृष्णमूर्ति साहित्य :

	पृष्ठ संख्या
प्रेम की नज़र विचार की नज़र से जुदा है	4
यही मौन मैं खोजता रहा हूँ	13
प्रकृति को विचार ने नहीं बनाया	18
यह एक सुहानी सुबह थी	20
केवल वे ही थीं	22
वह बस भीख माँगता था...	26
द्विभाषी उद्धरण	बीच के पन्ने

मंथन और संवाद :

कृष्णमूर्ति वीडियोज़ हिंदी सब-टाइटल के साथ	29

वार्षिक शुल्क : रु. 100.00	दो वर्ष रु. 175.00
पांच वर्ष के लिए : रु. 400.00	आजीवन रु. 1000.00

संपादकीय

इस बार का अंक शायद यह दर्शा पाए कि पूरे होश में, जीवंत रूप से कुदरत के साथ संपर्क में रहना क्या होता है। शायद यह हर तरह के रिश्ते के गहरे आयामों को उजागर कर पाए। हर शै, हर स्थिति-परिस्थिति जो अपने निरीक्षण-परीक्षण या अनुभूति-संवेदन के दायरे में आती है, के प्रति कोमलता के साथ जागरूक हो रहना बिना सौंदर्य या भद्देपन को नकारे, बस यूँ ही, लगता है एक आज़ाद मन, एक उन्मुक्त मन के ही लक्षण हो सकते हैं। उस पारदर्शी मन से जो भी अभिव्यक्ति निकलती है वह सब कुछ जस का तस दर्शाती चलती है, जीवन की पीड़ा को परपीड़ा के एहसास की संवेदनशीलता में रूपांतरित करती हुई, कुछ इस तरह :

''हिंसा का बोलबाला है, घृणा बढ़ती जा रही है, और पहाड़ पर बने उस मंदिर में भीड़ लगी है। वह नदी तीर्थ है लाखों यात्रियों के लिए, उसे सर्वाधिक पवित्र नदी माना जाता है, और तीर्थयात्री थके-माँदे लौटते हैं, पर खूब खुश-खुश। यह धर्म के नाम पर मनोरंजन करने का उनका अपना ढंग है। संन्यासी और साधु हर तरफ नज़र आ जाते हैं, उनमें कुछ तो गंभीर हैं, और कुछ ऐसे जिन्होंने जीवन चलाने के सबसे आसान तरीके के रूप में इस वेश को अपनाया है। अपार कुरूपता दीख पड़ती है; तथा किसी वृक्ष का और किसी चेहरे का अगाध सौंदर्य भी विद्यमान है। रास्ते में कोई भिखारी प्राचीन देवी-देवताओं, पुराण-कथाओं और भलाई के सौंदर्य के विषय में गाता-सुनाता जा रहा है। इमारत बनाने में लगे मजदूर उसे सुनते हैं, और अपनी थोड़ी सी कमाई में से भी कुछ उसे दे देते हैं जो गा रहा है। असाधारण है यह भूमि और असाधारण है इसकी व्यथा। आप इसे अपने भीतर, कहीं गहरे में महसूस करते हैं; आपकी आँखें नम हैं।''

प्रेम की नज़र विचार की नज़र से जुदा है

बाँस और मिट्टी से बने एक डाँवाडोल पुल से होते हुए आप उस छोटी-सी नदी को पार करते हैं। वह एक बड़ी नदी से जुड़ती है और उसके तेज़ बहाव में समा जाती है। उस छोटे पुल में दरारें थीं और आपको बहुत सावधानी बरतनी पड़ रही थी। आप उस रेतीली चढ़ाई पर चढ़े और एक छोटे मंदिर के पास से गुज़रे। फिर कुछ और दूरी पर एक कुआँ था जो शायद धरती के प्राचीन कुओं जितना पुराना था। यह कुआँ एक गाँव के किनारे पर था, जहाँ कई बकरियाँ थीं और भूखे स्त्री-पुरुष थे जिन्होंने कड़ाके की ठंड से बचने के लिए खुद को मैले-कुचैले कपड़ों में लपेट रखा था। वे उस बड़ी नदी में मछली पकड़ते थे, पर फिर भी वे सभी दुबले-पतले, क्षीण थे, वक्त से पहले बूढ़े हो गए थे, कुछ तो अपंग और लाचार थे। इस गाँव में जुलाहे थे जो अँधेरे, सीलन भरे, छोटी-छोटी खिड़कियों वाले कमरों में सुंदर से सुंदर जरी और रेशम की साड़ियाँ बनाते थे। उन्हें यह कला और कारोबार बाप-दादाओं से विरासत में मिला था, जबकि मुनाफ़ा बिचौलिए और दुकानदार कमाते थे।

आप इस गाँव से होकर गुज़रने की बजाय बायीं ओर चल देते हैं, उस पथ पर जो पवित्र माना जाता है क्योंकि कहते हैं कि कोई 2500 साल पहले इसी पथ पर बुद्ध चले थे, और देश भर से तीर्थयात्री इस पर चलने आया करते हैं। यह पथ हरे-भरे खेतों, आम के बागान, अमरूद के पेड़ों और कुछ इधर-उधर बिखरे मंदिरों से होकर गुज़रता है। वहाँ एक प्राचीन गाँव था, शायद बुद्ध के समय से भी पुराना, और कई मंदिर और जगहें थीं जहाँ तीर्थयात्री रात गुज़ार सकते थे। वक्त के साथ ये खंडहरों में तब्दील हो चुके थे; किसी को इनकी परवाह नहीं रही थी; वहाँ बकरियाँ इधर-उधर घूम रही थीं। पेड़ बड़े-बड़े थे; एक पुराना

इमली का पेड़ जिस पर गिद्ध और तोतों के झुंड बैठते हैं। आप देखते कि वे कैसे उड़ कर आते और हरे पेड़ में गुम हो जाते; वे पत्तियों का रंग इख्तियार कर लेते; आपको उनकी चें-चें तो सुनाई देती लेकिन उन्हें आप देख नहीं पाते।

मार्ग के दोनों तरफ रबी की गेहूँ के खेत फैले हुए थे; और दूर दिखाई पड़ रहे थे कुछ ग्रामवासी और उनकी अँगीठियों से उठता धुआँ। हवा नहीं चल रही थी, धुआँ सीधे ऊपर की ओर उठ रहा था। भारी-भरकम, क्रूर दिखने वाला, पर असलियत में बिल्कुल भोला-सा एक बैल खेतों में घूम रहा था। एक किसान उसे खेत के एक सिरे से दूसरे की ओर हाँक रहा था, और वह बैल चलते-चलते अनाज चबाता जा रहा था। रात को बारिश हुई थी और धूल नीचे बैठ गयी थी। दोपहर को सूरज गर्मी बरसाएगा लेकिन अभी वहाँ घने बादल थे और दिन में चलना भी सुखद लग रहा था। मिट्टी की खुशबू सूँघना, धरती के सुंदर नज़ारे को देखना कितना खुशनुमा था। यह एक बहुत ही पुराना शहर था, सम्मोहन और मानव-व्यथा से भरा, अपनी गरीबी और उन निरुपयोगी मंदिरों समेत।

यह मंदिर इसमें बसे देवताओं से भी पुराना था। ये देवता तो इस मंदिर में बंदी रहे, लेकिन यह मंदिर बहुत ही प्राचीन था। इसकी मोटी दीवारें थीं और गलियारों में ऊँचे स्तंभ थे, जिन पर घोड़ों, देवताओं और देवदूतों की आकृतियों की नक्काशी की गई थी। इन आकृतियों में एक अनोखी सुंदरता थी, और उनके पास से गुज़रते हुए यह ख्याल आपके मन में उठता है कि इन सभी आकृतियों में—मंदिर के गर्भगृह में स्थापित ईश्वर में भी—अगर जान आ जाए, तो क्या होगा।

कहा जाता है कि यह मंदिर, और खासतौर पर इसका गर्भगृह, जितने समय की हम कल्पना कर सकें, उससे भी कहीं ज़्यादा पुराना है। सूरज की रोशनी से प्रकाशित, पैनी, स्पष्ट

परछाइयों से भरे गलियारों में इधर-उधर टहलते हुए आप सोचते हैं कि आखिर इस सब का अर्थ क्या है—किस तरह इंसान ने खुद अपने मन में इन देवी-देवताओं की कल्पना कर ली और फिर अपने हाथों से उन्हें तराशा, और उन्हें मंदिरों और गिरजाघरों में रख कर पूजने लगा।

प्राचीनकाल के मंदिरों का एक अजीब-सा सौंदर्य और आकर्षण हुआ करता था। उन्हें देख कर यूँ लगता था मानो धरती की कोख ने ही उन्हें जन्म दिया हो। यह मंदिर शायद उतना ही पुराना था जितना कि खुद मानव, और इसमें रखे देवी-देवताओं को रेशम के कपड़े पहनाए गए थे, फूलमालाओं से उन्हें सजाया गया था, और मंत्रों, धूपबत्तियों और घंटियों द्वारा उन्हें नींद से जगाया जाता था। इस विशाल, कई एकड़ तक फैले मंदिर के कोने-कोने में इन धूपबत्तियों की महक व्याप्त थी, जो कई सदियों से यहाँ जलाई जा रही थीं।

देश के हर कोने से लोग यहाँ आते जान पड़ते थे—धनवानों से लेकर दरिद्रों तक—लेकिन मंदिर के गर्भगृह में जाने की अनुमति केवल एक वर्ग विशेष के लोगों को ही थी।

एक बड़ी तादाद में पक्षी दूर आकाश में उड़ रहे थे, कुछ उस बड़ी नदी को लाँघते और कुछ, ऊँचे गगन में, बिना पंखों की ज़रा भी हरकत के, लंबे चक्करों में विचरण कर रहे थे। ऊँचे उड़ने वालों में ज़्यादातर गिद्ध थे और सूरज की तेज़ रोशनी में ये महज़ बिंदुओं की तरह दिखाई दे रहे थे, हवा की दिशा के विपरीत जाते हुए। अपनी नंगी गर्दनों और चौड़े, भारी पंखों के साथ ज़मीन पर ये फूहड़ और बेढंगे लगते थे। इनमें से कुछ इमली के पेड़ पर बैठे थे, और कौए इन्हें सता रहे थे। खासकर एक कौआ एक गिद्ध के पीछे हाथ धो कर पड़ा था और उस पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। वह गिद्ध उसकी इन हरकतों से ऊब गया और उड़ गया, और वह कौआ जो उसे परेशान कर

रहा था पीछे से आया और उड़ते हुए उस गिद्ध की पीठ पर जा बैठा। यह एक बहुत ही अजीबोगरीब नज़ारा था—एक गिद्ध जिसकी पीठ पर एक कौआ सवार था। ऐसा लग रहा था कि कौए को बहुत मज़ा आ रहा था जबकि वह गिद्ध उससे पीछा छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। आखिरकार वह कौआ उसे छोड़ कर नदी के पार उड़ गया और जंगल में कहीं गुम हो गया।

तोतों का झुंड नदी के उस पार से आया, टेढ़े-मेढ़े उड़ते, चिल्लाते, पूरी दुनिया को अपने आने की खबर देते हुए। इनके पंख चमकदार हरे रंग के थे और चोंचें लाल, और इनकी एक बड़ी संख्या उस इमली के पेड़ पर बैठी हुई थी। वे सुबह निकलते, नदी के एक छोर से दूसरे छोर तक उड़ते-फिरते और कभी-कभी चिल्लाते, चें-चें करते लौट आते, लेकिन ज़्यादातर ये पूरा दिन गायब रहते और शाम होने पर ही वापस आते, खेतों से अनाज के दाने चुराकर या जो फल मिल जाए उसे खाकर। इमली के पत्तों में इनकी एक झलक दिखाई पड़ती, और फिर ये गायब हो जाते। पेड़ के तने में बना एक बड़ा कोटर इनका घर था, जहाँ नर और मादा रहते थे, और बेहद खुश दिखाई देते थे, कोटर से बाहर उड़ते हुए अपनी खुशी को चें-चें की आवाज़ से ज़ाहिर किया करते थे। संध्याकाल और उषाकाल में सूर्य नदी के आर-पार एक डगर बना देता था—सुबह सुनहरी और शाम को रुपहली। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लोग नदियों की पूजा करते हैं; यह मूर्तियों और उनके साथ जुड़े कर्मकांडों और आस्थाओं से तो कहीं बेहतर है। नदी सजीव थी, गहरी और प्रचुर, हमेशा गतिशील; और इसके किनारे के छोटे ताल हमेशा ठहरे हुए, गतिहीन।

हर इंसान खुद को एक छोटे-से ताल में अलग-थलग कर लेता है, और वहीं जीर्ण होता रहता है; वह नदी के पूरे बहाव में कभी प्रवेश नहीं करता। पता नहीं कैसे, लेकिन पीछे बसे इंसानों द्वारा गंदी-मैली कर दी गई यह नदी, बीच में बिल्कुल साफ़ थी, नीली-हरी और गहरी। यह नदी बहुत ही शानदार

लगती थी, विशेष तौर पर तड़के सूर्योदय से पहले; इतनी स्थिर, बिना किसी हलचल के, पिघली हुई चाँदी के रंग की। और, जैसे-जैसे पेड़ों के ऊपर से होते हुए सूरज चढ़ता जाता, नदी सुनहरी होती जाती, और तब फिर से एक रुपहले पथ में बदल जाती; और नदी का पानी जैसे सजीव हो उठता।

आप एक छोटे पत्थर के बने दरवाज़े से होकर, समय के साथ घिस चुकी एक दहलीज़ को लाँघ कर भीतर जाते हैं। गर्भगृह के बाहर पत्थर में गढ़े संरक्षक-द्वारपाल थे, और उसके अंदर थे पुरोहित, कमर तक निर्वस्त्र, मंत्र पढ़ते, गंभीर और गरिमापूर्ण। वे सभी अच्छे खाते-पीते लोग लगते थे, बड़ी-बड़ी तोंद और कोमल-नाज़ुक हाथों वाले। इतने सालों से मंत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी आवाज़ें बेसुरी और रूखी हो गई थीं; और उस ईश्वर या देवी की लगभग कोई आकृति नहीं थी। किसी ज़माने में कोई चेहरा रहा होगा लेकिन वे नाक-नक्श लगभग गायब हो चुके थे। उनके गहने ज़रूर बेशकीमती होंगे।

मंत्रों का उच्चारण थमा तो एक गहरी शांति छा गई और यूँ लगा जैसे धरती ने घूमना बंद कर दिया हो। यहाँ भीतर सूरज की रोशनी नहीं थी, और जो भी प्रकाश था वह तेल से जलती बत्तियों की वजह से था। इन बत्तियों ने मंदिर की छत को काला कर दिया था और वातावरण में एक रहस्यमय अंधकार था।

सभी देवताओं की पूजा रहस्य और अंधकार के पर्दे में होनी चाहिए, नहीं तो उनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता।

जब आप बाहर सूरज की खुली चमकीली रोशनी में आते हैं और नीले आकाश और ऊँचे लहलहाते ताड़ के पेड़ों को देखते हैं, तो मन में यह सवाल उठता है कि क्यों मनुष्य अपने ही हाथों से, अपने ही मन से गढ़ी छवियों के रूप में खुद को ही पूजा करता है। भय, और वह मनोहारी नीला आकाश, एक-दूसरे से कितने दूर दिखाई पड़ते हैं।

दिन की शुरूआत बादलों की छाया और धुँधले आकाश से हुई, और नग्न पेड़ जंगल में मौन खड़े थे। जंगल के पार क्रोकस, डैफोडिल और चमकीले पीले रंग के फोरसाइथिया के फूल दिखाई पड़ रहे थे। आप दूर से इन सभी को निहार रहे थे और वे हरी घास पर सजी पीली रँगोली-से लग रहे थे। जैसे-जैसे आप इसके नज़दीक आये, आपकी आँखें उस दमकते पीले रंग से चुँधिया-सी गयीं—जो ईश्वर था। ऐसा नहीं है कि आप खुद को उस पीले रंग से जोड़ रहे हैं, या आप वह विस्तार बन गये हैं जिसने विश्व को उस रंग से भर दिया है—बल्कि उसे देखने वाला 'मैं' वहाँ था ही नहीं। बस वही मौजूद था, और कुछ नहीं—न आपके इर्द-गिर्द की ध्वनियाँ, न श्यामापक्षी का प्रातःकालीन गान, न गुज़रते लोगों की आवाज़ें, न आपके बिल्कुल पास से गुज़र जाने वाली गाड़ी का शोर-शराबा। बस वह था, और कुछ नहीं। और उस होने में सौंदर्य था, और प्रेम था।

आप उस जंगल में वापस जाते हैं। कुछ बूँदे क्या पड़ीं कि पूरा जंगल वीरान हो गया। बसंत अभी आया ही था, लेकिन यहाँ, उत्तर में पेड़ों पर पत्ते नहीं थे। वे अभी भी सर्दी के ज़ोर से, धूप और सुहाने मौसम की राह तकते रहने के कारण उदास-उचाट से थे। पास से एक घुड़सवार निकला, उसका घोड़ा पसीने से तर था। घोड़ा अपनी शान में, अपनी चाल में, उस आदमी से कहीं अधिक, कहीं भरा-पूरा लग रहा था; जबकि वह घुड़सवार अपनी पोशाक, भरपूर पॉलिश से चमकाए जूतों और खास घुड़सवारों के लिए बनी टोपी पहने भी बेमायने लग रहा था। घोड़ा अच्छी नस्ल का था, सिर ऊँचा लिए चल रहा था। वह आदमी, जो भले ही उस घोड़े की पीठ पर सवार था, प्रकृति के संसार में किसी अजनबी की तरह था, जबकि वह घोड़ा प्रकृति का हिस्सा लग रहा था—उस प्रकृति का जिसे आदमी धीरे-धीरे तबाह और बर्बाद कर रहा है।

पेड़ ऊँचे और विशालकाय थे—शाहबलूत, एल्म और बीच। वे सभी चुपचाप, मौन खड़े थे। पतझड़ के पत्तों से ज़मीन

नर्म थी, और यहाँ धरती बहुत ही बूढ़ी लग रही थी। पंछी थोड़े ही थे। श्यामापक्षी पुकार रहा था, और आसमान साफ़ हो रहा था।

अगर आप उस छोटे शहर से होकर गुज़रते हैं जिसमें एक ही गली है जो दुकानों से भरी है—बेकरी की दुकान, फोटो की दुकान, पुस्तकों की दुकान और खुला रेस्तरां—फिर उस पुल के नीचे से, ड्रेस बनाने वाले की दुकान के सामने से, एक और पुल पार करते हुए, आराघर के सामने से गुज़रते हुए आप जंगल में प्रवेश करते हैं और उस निर्झर के किनारे-किनारे चलते जाते हैं; आप वह सब देखते रहे हैं, जिससे होकर आप गुज़रे हैं, आपकी आँखें और इंद्रियां पूरी तरह जागी हैं, लेकिन मन में एक भी विचार नहीं—तभी आप जानेंगे कि बिना अलगाव के जीना क्या है। आप एक या दो मील तक उस नदी के साथ चलते हैं—मन में किसी भी विचार की ज़रा भी हलचल के बिना—तेज़ी से बहती धारा को देखते हुए, उसका शोर सुनते हुए, उस पर्वतीय निर्झर के सलेटी-हरे रंग को देखते हुए, पेड़ों और उनकी शाखाओं के बीच से झाँकते नीले गगन को निहारते हुए, और हरे-भरे पत्तों को देखते हुए—फिर, बिना एक भी विचार के, बिना शब्द के—तब आप जानेंगे कि अपने और घास की एक पत्ती के बीच तनिक भी दूरी न होने का अर्थ क्या है।

आगे चलते हुए अगर आप खुले मैदानों और उनमें खिले अनगिनत रंगों के फूलों को, चमकदार लाल से लेकर पीले और बैंगनी रंग के फूलों को देखते हैं और वहाँ की हरी-भरी घास पर नज़र डालते हैं जो पिछली रात हुई बारिश से बिल्कुल साफ़, भरपूर और तरोताज़ा हो गयी है—एक बार फिर, विचार के पूरे यंत्र की किंचित भी गति के बगैर—तब आप जानेंगे कि प्रेम क्या है। नीले आकाश और उसमें तिरते भरे-पूरे बादल, हरे-भरे पहाड़ और क्षितिज पर उनकी स्पष्ट रेखाएँ, हरी-भरी घास और मुरझाता हुआ वह फूल—इन सभी को बीते कल के एक भी शब्द के बिना देखना; तब, जब मन-मस्तिष्क पूरी तरह खामोश है,

मौन है, किसी भी विचार द्वारा उद्वेलित नहीं है, जब अवलोकनकर्ता पूरी तरह से गैरहाज़िर है, तभी एकत्व है, एक होना है। ऐसा नहीं है कि आप उस फूल से एकात्म हो जाते हैं, या उस बादल से, या उन विस्तीर्ण पहाड़ों से, बल्कि एक एहसास होता है पूरी तरह न-होने का जिसमें आपके और अन्य के बीच कोई विभाजन नहीं रह जाता। बाज़ार से खरीदे सामान को उठा कर ले जा रही वह औरत, वह काला बड़ा अल्सेशन कुत्ता, गेंद से खेलते वे दो बच्चे—यदि आप इन सब को बिना किसी शब्द के, बिना माप-तोल के, बिना किसी पुरानी बात या याद के साथ संबंध जोड़े देख पाते हैं, तब आपके और अन्य के बीच कोई झगड़ा नहीं रहता। यह अवस्था, जिसमें कोई शब्द नहीं है, कोई विचार नहीं है, एक ऐसे मन का विस्तार है जिसकी कोई सीमा नहीं है, कोई अंदरूनी हदें नहीं हैं जिनके दायरे में 'यह मैं' और 'यह मैं नहीं' का वजूद रह सके। यह मत समझिए कि यह सब कहने की बातें हैं, या कल्पनाएँ हैं, या किसी आध्यात्मिक अनुभव की चाह है; ऐसा नहीं है। यह उतना ही सच है जितना फूल पर बैठी वह मधुमक्खी या साइकल पर सवार वह लड़की या घर की पुताई करने के लिए सीढ़ी पर चढ़ता वह आदमी—अलगाव से जो मन ग्रस्त था अब उसका समस्त द्वंद्व समाप्त हो चुका है। देखने में अवलोकनकर्ता नदारद है, और वैसे ही नदारद है शब्दों की महत्ता और कल या काल का माप-तोल। प्रेम की नज़र विचार की नज़र से जुदा है। एक हमें ऐसी दिशा में ले जाती है जहाँ विचार पीछा नहीं कर सकता, और दूसरी हमें अलगाव, द्वंद्व और दुख की ओर ले जाती है; इस दुख से, आप उस अन्य तक नहीं जा सकते। इन दोनों में दूरी विचार की पैदा की हुई है, और विचार कितनी भी लंबी छलाँग लगा ले, उस अन्य तक नहीं पहुँच सकता।

वापस चलते हुए, छोटे फार्महाउसों, हरे मैदानों और रेल की पटरी के सामने से गुज़रते हुए, आप देखेंगे कि कल का अंत हो चुका है : जीवन शुरू वहीं से होता है जहाँ विचार का अंत हो जाता है।

जब आप शाम को वापस लौटे तब आकाश बिल्कुल साफ़ था और विशाल पेड़ों पर पड़ती रोशनी अनूठी थी, एक शांत गति से भरपूर।

रोशनी एक अद्‌भुत चीज़ है; आप जितना इसे देखते हैं यह उतनी ही अधिक गहरी और विशाल होती जाती है; और इसी के प्रवाह ने पेड़ों को गिरफ्त में ले लिया था। यह आश्चर्यजनक था; कोई भी कैन्वस इस रोशनी की सुंदरता को कैद करने में असफल रहता। यह ढलते सूरज की उस लालिमा से बढ़ कर थी; उससे कहीं अधिक थी जितना आपकी आँखें देख पा रही थीं। यह ऐसी थी मानो धरती पर प्रेम उतर आया हो। आपने फिर फोरसाइथिया के फूलों की वह पीली क्यारी देखी, और धरती उल्लास से भर उठी।

– 'द ओनली रेवल्यूशन' से
अनुवाद : भूमिका

आकाश हरे, बैंगनी, जामुनी, नीले आदि विभिन्न रंगों की प्रखर ज्वालाओं से आलोकित था। उस पहाड़ी पर तो जामुनी और सुनहरी रंग-छटा का अथाह विस्तार ही था; दक्षिणी पहाड़ियों पर तो प्रज्वलित मृदु हरे, और क्षीणाभ नीले रंगों का मेला लगा ही था, पूर्व दिशा में भी उतना ही वैभवशाली एक छाया-सूर्यास्त हो रहा था, सिंदूरी और केसरिया, नारंगी और हल्के जामुनी रंगों के अंबार लगे थे। यह छाया-सूर्यास्त भी पश्चिम के सूर्यास्त-सा ही सौंदर्य का प्रस्फुटन था; उधर कुछ मेघ अस्त होते सूर्य के चारों ओर एकत्रित थे, वे शुद्ध निर्धूम अग्नि से प्रदीप्त मेघ, कभी न बुझने वाली अग्नि ही थे। इस अग्नि की व्यापकता हर वस्तु में ओत-प्रोत थी और कण-कण में और सारी धरती में प्रवेश कर रही थी। धरती स्वर्ग थी और स्वर्ग धरती ही था। हर वस्तु जीवंत थी और रंगवैभव से छलक रही थी, और रंग ईश्वर था; पर मनुष्य वाला ईश्वर नहीं।

'कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक' से

यही मौन मैं खोजता रहा हूँ

पास के घर में कोई स्त्री गा रही थी। उसका कंठ बहुत सुरीला था और थोड़े-बहुत लोग जो उसे सुन रहे थे, मुग्ध थे। आम और ताड़ के हरे-भरे और सुनहरे वृक्षों के बीच से सूरज डूब रहा था। वह कोई भक्तिगीत गा रही थी और उसका स्वर लगातार सौम्य और समृद्ध होता जा रहा था। सुनना एक कला है। जब कभी आप ज़मीन पर बैठकर पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत या इस स्त्री के गीत जैसा कुछ सुनते हैं, तो या तो आप भाव में बह जाते हैं या आपको बीता हुआ कुछ याद आने लगता है। या फिर विचार और उससे जुड़ी चीज़ें तेज़ी से आपके मूड को बदलने लगती हैं। या फिर आपको भविष्य के संकेत मिलने लगते हैं। या, आप विचार की किसी भी तरह की हलचल के बिना सुन पाते हैं; पूरी शांति, पूरे मौन में आपका सुनना होता है।

बिना विचारों की प्रतिक्रिया के, अपने विचार को सुनना, डाल पर बैठे उस ब्लैकबर्ड को, या जो कहा जा रहा है उसे सुनना एक ऐसी अर्थवत्ता लाता है, जो विचारों की गतिविधि द्वारा दिये जा रहे अर्थों से पूरी तरह भिन्न होती है। यही है सुनने की कला, पूरे अवधान के साथ सुनना : कोई केंद्र नहीं है जो सुन रहा है।

पहाड़ों पर की खामोशी में एक गहराई होती है जो घाटियों की खामोशी में नहीं होती। हरएक की अपनी खामोशी होती है; बादलों के बीच की खामोशी और पेड़ों के बीच की खामोशी में बड़ा भारी फर्क होता है। दो विचारों के बीच की खामोशी समय से परे होती है। सुख और भय के दौरान की खामोशी को तो हम स्पर्श कर सकते हैं। विचार जिसे गढ़ सके, वैसा बनावटी मौन तो मृत्यु है। शोरगुल के बीच का सन्नाटा सिर्फ शोरगुल की अनुपस्थिति ही है, यह शांति नहीं है ,जैसे युद्ध का न होना शांति

नहीं। किसी गिरजाघर या मंदिर का स्याह सन्नाटा प्राचीन और सुंदर होता है, जिसे मनुष्य द्वारा विशेषतः निर्मित किया जाता है। भूत और भविष्य की भी एक खामोशी होती है जैसे कि म्यूज़ियम और कब्रिस्तान की। यह सब है तो, पर यह मौन नहीं है।

वह आदमी उस खूबसूरत नदी के किनारे, निश्चल होकर बैठा रहा, करीब एक घंटा बीत गया। हर सुबह वह वहाँ आता, नहा-धोकर, और कुछ समय के लिए संस्कृत के मंत्रों का पाठ करता और जल्द ही अपने विचारों में खो जाता। लगता था कि उसे सूरज से, खासकर सुबह के सूरज से कोई दिक्कत नहीं होती थी। एक दिन वह आया, और ध्यान के बारे में बात करने लगा।

वह ध्यान की किसी पद्धति से जुड़ा हुआ नहीं था। वह उन्हें बेकार समझता था, उनका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं था। वह अकेला था, अविवाहित, और दुनियादारी के तौर-तरीकों को बहुत पहले छोड़ चुका था। अपनी कामनाओं को उसने नियंत्रित कर लिया था, अपने विचारों को एक निश्चित आकार दे दिया था, और एकाकी जीवन बिता रहा था। वह कटु, उदासीन और घमंडी नहीं था; यह सब तो वह कई वर्ष पहले भुला चुका था। ध्यान और वास्तविकता ही उसका जीवन था। इधर वह बातें करता गया, सही शब्द टोहता रहा, उधर सूरज डूब रहा था और हमारे ऊपर एक गहरा मौन उतरने लगा। उसने बोलना बंद कर दिया। थोड़ी देर बाद जब तारे ज़मीन के बिलकुल करीब थे तो उसने कहा, ''यह वही मौन है जिसे मैं हर जगह खोजता रहा हूँ—किताबों में, शिक्षकों के बीच और अपने आप में। मैंने सब कुछ पाया है पर इसे नहीं पा सका हूँ। यह अपने आप बिन खोजे ही आया है। क्या मैं उन बातों में अपना जीवन बर्बाद करता रहा हूँ जिनका कोई मतलब ही नहीं? आपको पता नहीं कि मैं किन-किन उपवासों, अभ्यासों और आत्मसंयमों से होकर गुज़रा हूँ। मैंने इनकी व्यर्थता बहुत पहले ही देख ली थी लेकिन इस मौन तक कभी नहीं पहुँच पाया। मैं ऐसा क्या करूँ जिससे

इसी मौन में बना रहूँ, इसे कायम रख सकूँ और इसे अपने दिल में बसा लूँ? मुझे लगता है कि आप कुछ न करने को ही कहेंगे क्योंकि इस मौन को न्योता नहीं दिया जा सकता। पर क्या मैं इस दुहराव, इस दमन के साथ ही यहाँ-वहाँ भटकता रहूँ? मैं यहाँ बैठकर इस पवित्र मौन के प्रति सजग हूँ। इसके ज़रिये मैं इन तारों, इन वृक्षों, इस नदी को देख पा रहा हूँ। हालांकि मैं यह सब देख रहा हूँ और महसूस कर रहा हूँ, पर मैं वस्तुतः हूँ ही नहीं। जैसा कि एक दिन आपने कहा था कि देखने वाला ही दृश्य है। अब मैं इसका मतलब समझ पा रहा हूँ। जिस आशिष को मैं खोज रहा था, वह खोजने से नहीं मिलता। अब मेरे जाने का समय हो गया है।''

नदी पर अँधेरा छा गया था और इसके किनारों के करीब के पानी पर तारों के प्रतिबिंब बन रहे थे। आहिस्ता-आहिस्ता दिन का कोलाहल खत्म हुआ और शुरू हुई रात की धीमी आवाज़ें। आप तारों को और स्याह धरती को देख रहे थे। दुनिया जैसे कहीं दूर थी। ऐसा लगा जैसे धरती पर और उस पर की हर चीज़ पर सौंदर्य उतर आया हो; सौंदर्य, जो प्रेम है।

– 'कृष्णमूर्तीज़ जर्नल' से

अनुवाद : अमित प्रताप सिंह

Experiencing and sensations

Does not music offer us, in a very subtle way, a happy release from what is? Good music takes us away from ourselves, from our daily sorrows, pettiness and anxieties, it makes us forget; or it gives us strength to face life, it inspires, invigorates and pacifies us. It becomes a necessity in either case, whether as a means of forgetting ourselves or as a source of inspiration. Dependence on beauty and avoidance of the ugly is an escape which becomes a torturing issue when our escape is cut off. When beauty becomes necessary to our well-being, then experiencing ceases and sensation begins. The moment of experiencing is totally different from the pursuit of sensation. In experiencing there is no awareness of the experiencer and his sensations. When experiencing comes to an end, then begin the sensations of the experiencer; and it is these sensations that the experiencer demands and pursues. When sensations become a necessity, then music, the river, the painting are only a means to further sensation. Sensations become all-dominant, and not experiencing. The longing to repeat an experience is the demand for sensation; and while sensations can be repeated, experiencing cannot.

अनुभूति और संवेदन

क्या ऐसा नहीं है कि संगीत बहुत सूक्ष्म रूप से हमें 'जो है' से सुखद छुटकारा दिलाने का काम करता है? अच्छा संगीत हमें अपने से, अपने दैनंदिन दुखों से, क्षुद्रताओं और चिंताओं से दूर ले जाता है, इन सबको विस्मृत करवा देता है, अथवा जीवन का सामना करने की सामर्थ्य देता है, प्रेरणा देता है, स्फूर्ति और उत्साह से भर देता है तथा हमें शांत करता है। इस तरह अपने को भूल जाने के लिए कहिए, या प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए कहिए, संगीत हमारे जीवन की एक आवश्यकता बन जाता है। किंतु सौंदर्य पर अवलंबित रहना और कुरूपता को अनदेखा करना एक पलायन ही है। जब हमारा यह पलायन खो-छिन जाता है, तब स्थिति हमारे लिए अत्यंत क्लेशदायक हो जाती है। हमारी खुशहाली के लिए जब सौंदर्य अनिवार्य हो जाता है, तो अनुभूति होना बंद हो जाता है, और संवेदन का, सनसनी का होना शुरू होता है। अनुभूति का क्षण सनसनी पाने की दौड़ से पूर्णतः भिन्न होता है। अनुभूति में अनुभूति करने वाले और उसके संवेदनों का कोई भान नहीं होता। जब अनुभूति होना समाप्त हो जाता है, तब अनुभूतिकर्ता के संवेदनों की, उत्तेजनाओं की शुरूआत होती है और इन्हीं की अनुभवकर्ता माँग करता है, इन्हीं के पीछे दौड़ने लगता है। जब ये संवेदन एक ज़रूरत बन जाते हैं, तो संगीत, वह नदी, वह चित्र केवल उत्तेजना, संवेदन हासिल करने के साधन भर रह जाते हैं। तब ये संवेदन ही पूरी तरह हावी हो जाते हैं और अनुभूति के लिए जगह नहीं रहती। किसी अनुभूति की पुनरावृत्ति की लालसा ही उत्तेजना की, संवेदन की माँग है, और उत्तेजनाओं को तो दुहराया जा सकता है, जब कि अनुभूति को आप दुहरा नहीं सकते।

– 'कमेन्टरीज़ ऑन लिविंग, भाग एक' से
अनुवाद – जमनालाल जैन

प्रकृति को विचार ने नहीं बनाया

आज हम दोनों मिलकर इंसान और प्रकृति के बीच रिश्ते की बात करने जा रहे हैं। वह रिश्ता जो आपके और वातावरण के बीच है। वातावरण वह शहर या कस्बा या गाँव ही नहीं जिसमें आप रहते हैं, बल्कि इसमें प्रकृति का पर्यावरण भी शामिल है। अगर प्रकृति के साथ आपका कोई रिश्ता नहीं है, तो इंसान के साथ भी आपका कोई रिश्ता न होगा। प्रकृति जो कि वादियाँ, नदी—नाले और पूरी हैरतअंगेज़ धरती है, पेड़ और धरती की खूबसूरती है। अगर इन सबके साथ हमारा कोई रिश्ता नहीं है, तो हमारे बीच आपसी रिश्ता भी न होगा, क्योंकि प्रकृति को विचार ने नहीं बनाया, बाघ को विचार ने नहीं बनाया, या संध्या के पानी पर झिलमिलाते तारों को विचार ने नहीं बनाया। विचार ने नीले आकाश की पृष्ठभूमि में दिखते उन विशाल पहाड़ों को नहीं बनाया जिनकी चोटियाँ बर्फ से ढँकी हैं, न ही सूर्यास्त और उस तनहा चाँद को जिसके आसपास कोई सितारा नहीं होता। तो प्रकृति को विचार ने नहीं रचा है।

प्रकृति एक वास्तविकता है। इंसानों के बीच हमने जो कुछ रचा है, वह भी वास्तविकता है, लेकिन एक ऐसी वास्तविकता जिसमें द्वंद्व है, कशमकश है, हर कोई कुछ-न-कुछ बनने की कोशिश में लगा है, शारीरिक रूप से और आंतरिक, मानसिक रूप से और अगर मैं कहूँ तो आध्यात्मिक रूप से भी। हम सभी कुछ-न-कुछ बनने के लिए संघर्षरत हैं। जब कोई कुछ बनने की कोशिश करता है, राजनीतिक या धार्मिक रूप से वह किसी पद-प्रतिष्ठा की आकांक्षा रखता है, तब न तो किसी दूसरे के साथ उसका कोई रिश्ता होता है, न ही प्रकृति के साथ।

आपमें से बहुत से लोगों का, जो शहरों की भीड़, शोर शराबे और आस पास की धूल-गर्द के बीच रहते होंगे, हो सकता

है प्रकृति के साथ आपका वास्ता कम रहा हो। लेकिन आपके सामने यह आश्चर्यजनक समुद्र है और उसके साथ आपका कोई रिश्ता नहीं है! आप उसे निहारते हैं, हो सकता है उसमें तैरते भी हों, लेकिन अगर समुद्र की उस अद्‌भुत शक्ति, उसकी ऊर्जा, लहरों की खूबसूरती, तट पर किसी लहर का टकराना-टूटना, समुद्र की उस आश्चर्यजनक गति और आपके बीच कोई रिश्ता न हो, तो किसी दूसरे इंसान के साथ आपका रिश्ता कैसे हो सकता है? अगर आप समुद्र को गहराई से नहीं देखते, पानी और लहरों के स्वभाव को, आती जाती लहरों की अद्‌भुत शक्ति को, तो आप जाग्रत कैसे रह सकते हैं? मेरी यह गुज़ारिश है कि इस बात को आप गहराई से समझें, क्योंकि बात जब खूबसूरती की हो, तो वह महज़ बाहरी रूपाकार में ही नहीं है, बल्कि बुनियादी तौर पर खूबसूरती है : संवेदनशीलता के, प्रकृति के अवलोकन, उसे देखने के गुणधर्म में।

– 'ऑन नेचर एण्ड एन्वायरनमैंट' से
अनुवाद : लवीन कुमार

प्रत्येक विचार तथा भावना का खिलना-विकसित होना आवश्यक है ताकि वे जिएँ और फिर मर भी सकें। आपमें विद्यमान हर चीज़ का—महत्त्वाकांक्षा का, लोभ का, घृणा का, हर्ष का, आवेग का इस प्रकार से खिल पाना बहुत महत्त्व रखता है, क्योंकि इस खिलने में ही उनकी मृत्यु और स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता में ही कोई वस्तु फल-फूल सकती है, दमन, नियंत्रण अथवा अनुशासन में नहीं; वे तो केवल विकृत तथा भ्रष्ट ही करते हैं।

– 'कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक' से

यह एक सुहानी सुबह थी

सुबह-सवेरे सूरज उगने से पहले नदी के ऊपर धुंध छाई हुई थी। दूसरी तरफ़ का किनारा धुँधला-धुँधला सा दिखाई दे रहा था। झुटपुटा अभी बाकी था, इसलिए पेड़ आसमान की पृष्ठभूमि पर सायों की तरह दीख रहे थे। मछुआरों की नावें अभी भी वहाँ थीं, वे अपनी छोटी टिमटिमाती लालटेनों समेत पूरी रात वहीं नदी पर रही थीं। अँधेरे में दबी-छुपी सी और ठहरी-ठहरी सी इन नावों पर से वे सारी रात मछलियाँ पकड़ते रहे थे, मगर खामोशी से। किसी शाम आप किसी मछुआरे को गाते हुए सुन सकते हैं, लेकिन अभी इस समय पौ फटने से पहले वे बहुत चुप-चुप, थके-हारे और उनींदे थे। नदी की धारा उन्हें धीरे-धीरे आराम से बहाए लिये चली जा रही थी और वे पकड़ी गई मछलियों को लिये नदी के इस तरफ, और आगे अपने छोटे से गाँव वापस लौट रहे थे। देखते ही देखते उगते और उठते सूरज ने आकाश में कुछ बादलों को उजास से भर दिया। वे सुनहरे हो गए थे और उनमें सुबह का अनूठा सौंदर्य खिल उठा था। उजाला फैलने लगा था जिससे हर चीज़ अब साफ़ दिखने लगी थी। कुछ देर बाद जब धूप पेड़ों तक आ गयी तो उस खिली धूप में कुछ तोते चीखते, चहचहाते हुए नदी के पार के खेतों की ओर जाते दिखायी दिये। हरे रंग और गहरी लाल चोंच वाले ये तोते शोर मचाते तेज़ रफ़्तार से उड़े जा रहे थे, लेकिन वे एक-दो घंटे बाद ही बाग के उस पार वाले इमली के पेड़ों की कोटरों में बने अपने छोटे-छोटे घोंसलों में वापस आ जाएंगे। देखते ही देखते वे हरी पत्तियों के बीच इतना घुलमिल जाएंगे कि आप शायद ही उन्हें देख पाएं, सिवा उनकी लाल-लाल चोंच के।

नदी के उस पानी पर सूरज एक सुनहरी डगर बना रहा था। एक खड़खड़ाती हुई रेलगाड़ी भद्दी आवाज़ के साथ पुल पार

कर रही थी; लेकिन यह नदी ही थी जिसने सुबह की सुंदरता को सँजोया हुआ था। इस किनारे से दूसरे किनारे के बीच एक चौड़ा पाट था—लगभग एक मील चौड़ा। उस किनारे पर गेहूँ बोया गया था और अब वह नया लहलहाता, हरा-भरा गेहूँ सुबह की ताज़ी शीतल हवा में चमक रहा था। देखते ही देखते वह सुनहरी डगर अब चाँदी की हो गई, चमकीली और साफ, और नदी पर चमकती इस चम-चम करती रोशनी को काफी लंबे समय तक देखा जा सकता है। यह वही रोशनी है जो पेड़ों में, खेतों में और किसी भी उस इंसान के दिल में उतर जाती है जो इसकी ओर देखता है।

दिन अपने चिर-परिचित शोरगुल-हलचल के साथ शुरू हो चुका था, लेकिन यह नदी ही थी जो अभी भी चमकती-दमकती, भरपूर, पूरे विस्तार के साथ प्रवाहित हो रही थी। यह दुनिया की सबसे पवित्र नदी थी, हज़ारों-हज़ारों सालों से पवित्र-पावन। देश के कोने-कोने से लोग इसमें स्नान करने, अपने पाप धोने आते हैं, भीगे-गीले कपड़ों में ही इसके किनारे बैठ आँखें बंद कर बगैर हिले-डुले ध्यान करते हैं। अब सर्दियों में नदी का जल-स्तर कुछ घट गया है, लेकिन बीच में वह अभी भी गहरी है जहाँ जलधारा का बहाव काफी तेज़ है। मानसून के आने और बरसात होने पर नदी तीस, चालीस, साठ फीट तक ऊपर उठ आती है, अपने रास्ते में आने वाली हर चीज़ को बहा ले जाती है, इंसानी गंदगी, मृत पशुओं और वृक्षों को अपने में समाती रहती है, जब तक कि वह फिर से निर्मल, सुंदर और विस्तीर्ण-परिपूर्ण न हो जाए।

उस दिन वहाँ कुछ था, जो नया था, और जब आप बैठकर उसे देख रहे थे, तो वह नयापन उन पेड़ों में नहीं था, न ही उन खेतों में और न ही उस ठहरे-ठहरे से जल में। वह कहीं और ही था। आप उसे एक नये मन, एक नये हृदय से देख रहे थे, ऐसी आँखों से जिनमें बीते कल की और मनुष्य के करने-धरने के अंबार की कोई स्मृति नहीं थी। यह एक शानदार, सुहावनी और ताज़गी भरी सुबह थी, और हवा जैसे कोई गीत गा रही

थी। कुछ भिखारी जा रहे थे और मैले-कुचैले फटे पुराने कपड़ों में लिपटी स्त्रियां जलावन ढो कर शहर ले जा रही थीं जो कि दो-एक मील दूर था। हर तरफ़ गरीबी और बेइंतहा लापरवाही थी। किंतु, साइकिलों पर दूध ले जा रहे लड़के मज़े से गाते हुए जा रहे थे, और टूटे-थके से, कृश तथा कठोर बदन वाले वयप्राप्त लोग चुपचाप, बिना रुके अपने रास्ते चले जा रहे थे। इस सब के बावजूद, यह एक सुहानी और स्वच्छ-स्पष्ट सुबह थी, और उसकी यह स्पष्टता न तो पुल से गुज़रती खड़खड़ाती रेलगाड़ी से भंग हो रही थी, न कौओं की कर्कश काँव-काँव से, और न ही दूसरे किनारे पर किसी को हाँक लगाते उस आदमी की आवाज़ से।

– 'बिगिनिंग्ज़ ऑव लर्निंग' से
अनुवाद : अरविंद शुक्ल

ईर्ष्या को खिलने देना सरल बात नहीं है; या तो इसकी निंदा की जाती है या फिर इसे अपने भीतर चाव से पाला-पोसा जाता है, पर इसे कभी स्वतंत्रता नहीं दी जाती। और केवल स्वतंत्रता में ही ईर्ष्या का तथ्य अपने रंग-रूप को, अपनी रचना और आकृति को, अपनी गूढ़ता और विलक्षणताओं को प्रकट करता है; यदि इसे दमित कर दिया जाता है तो यह अपने आप को पूर्ण रूप से तथा स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त न कर सकेगा। जब यह अपने स्वरूप को पूरी तरह से प्रकट कर चुका होता है तभी इसका अंत होता है और इस अंत में ही एक नये तथ्य का, रिक्तता का, एकाकीपन का, भय का दर्शन होने लगता है, और जैसे जैसे एक-एक तथ्य को खिलने दिया जाता है, उसे उसकी स्वतंत्रता में सफलतासहित अनावृत होने दिया जाता है, वैसे-वैसे द्रष्टा तथा दृष्ट के बीच का द्वंद्व समाप्त होता जाता है; तब नियंत्रक तो मिट जाता है, केवल अवलोकन, केवल देखना शेष रहता है।

– 'कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक' से

केवल वे ही थीं

पहाड़ी से नीचे उतरने वाला मार्ग ऊबड़-खाबड़ और धूलभरा था, और वह तलहटी के निकट छोटे नगर की ओर जाता था। पहाड़ी की ओर कुछ ही वृक्ष बचे थे, उनमें से अधिकांश ईंधन के लिए काट डाले गये थे, इसलिए घनी छाया के लिए काफी ऊँचाई तक चढ़कर जाना पड़ता था। उस ऊँचाई पर पेड़ों को मनुष्य के हाथों ने क्षत-विक्षत नहीं किया था; वे अपनी पूरी ऊँचाई तक बढ़े थे, उनकी शाखाएँ मोटी और पत्तों से भरी-भरी थीं। एकाध शाखा काटकर अपनी बकरियों के सामने पत्ते खाने के लिए लोग डाल देते थे और उसके निष्पर्ण होने पर उसी का ईंधन के लिए उपयोग करते थे। निचले भागों में लकड़ी का अभाव था, इसलिए अब लोग और-और ऊपर चढ़कर पेड़ों का नाश कर रहे थे। पहले जैसी भरपूर वर्षा आजकल नहीं होती थी; आबादी बढ़ रही थी और लोगों को गुज़र-बसर तो करनी ही थी। सारे प्रदेश में भूख की समस्या थी और जीने के प्रति भी वैसी ही उदासीनता थी जैसी मरने में होती है। आसपास कहीं जंगली जानवर नहीं थे, वे पर्याप्त ऊँचाई पर निकल गये होंगे। झाड़ियों के बीच पंख खुजलाते हुए कुछ थोड़े पंछी थे तो अवश्य, परंतु उनके भी कुछ पंख टूट चुके थे और वे थके-माँदे दिखाई पड़ते थे। शुभ्र और काले रंग का बनसर्रा पंछी एकाकी वृक्ष की एक टहनी से दूसरी पर उड़ते-उड़ते कर्कश स्वर में हंगामा कर रहा था।

ऊष्मा अब बढ़ रही थी और मध्याह्न तक बहुत अधिक बढ़ने वाली थी। अनेक वर्षों से पर्याप्त वर्षा हुई नहीं थी। रूखी धरती में दरारें पड़ी थीं, जो थोड़े वृक्ष थे उनके सर्वांग धूल से भूरे हो गये थे, और प्रातःकाल में ओस बिंदु की नमी तक नहीं थी। सूर्य निष्ठुर था, दिन पर दिन, महीनों के बाद महीने निकलते जा

रहे थे और संशयाधीन वर्षा ऋतु अभी काफी दूर थी। कुछ बकरियाँ पहाड़ी पर चढ़ गयीं, और उनके पीछे-पीछे गड़रिया भी, जो एक लड़का ही था। अन्य किसी और को भी वहाँ देखकर वह चकित हुआ, परंतु वह मुस्कुराया नहीं और गंभीर मुखमुद्रा लिये बकरियों के पीछे चला गया। वह स्थान एकांत था और बढ़ती गरमी की नीरवता सर्वत्र व्याप्त थी।

ईंधन का बोझ सिर पर लेकर दो स्त्रियाँ उस मार्ग से नीचे आ रही थीं। उनमें से एक वृद्धा थी और दूसरी काफी कम उम्र की; उनके बोझ काफी भारी दीखते थे। दोनों ने ही हरी लता से एकत्रित बाँधी हुई सूखी टहनियों का बड़ा-सा गट्ठर गोल लिपटे कपड़े को आधार बना कर अपने सिर पर संतुलित रखा हुआ था, और वे एक हाथ से उसे थामे हुए चल रही थीं। हलकी दौड़ती चाल में पहाड़ी के नीचे आते-आते उनके तन सहज मुक्त रूप से झूल-से रहे थे। मार्ग ऊबड़-खाबड़ था, पर वे नंगे पैरों चल रही थीं और उनके पैर जैसे अपने आप मार्ग पर बढ़ रहे थे, क्योंकि वे नीचे देख ही नहीं रही थीं; सिर उन्होंने ऊँचे उठा रखे थे, उनकी आँखें लाल, खोयी-सी थीं। दोनों ही बहुत दुबली-पतली थीं, और उनकी पसलियाँ तक दिखाई दे रही थीं। उस वृद्धा स्त्री के मैले बाल उलझे-से थे, परंतु उस लड़की के बालों में कभी तेल डालकर उन्हें कंघी से सँवारा गया होगा, क्योंकि उनमें अब भी कुछ स्वच्छ, चमकती लटें दिखाई पड़ती थीं। ज़्यादा समय नहीं बीता जब दूसरे बच्चों के साथ उसने भी गीत गाये होंगे और खेल खेले होंगे; परंतु अब वे दिन बीत चुके थे। अब इन पहाड़ियों में लकड़ियाँ इकट्ठा करना—यही उसका जीवन था, और मृत्युपर्यंत यही रहने वाला था, केवल कभी-कभी बच्चे के जन्म के साथ कुछ थोड़ा विश्राम उसके भाग्य में होगा।

उस मार्ग से हम सब उतरने लगे। कई मील दूर चलकर उस छोटे नगर के बाजार में वे अपना बोझ मामूली दाम पर बेचेंगी और दूसरे दिन अपना वही कार्य पुनः प्रारंभ करेंगी। लंबी

चुप्पी के बाद उनमें आपस में बातचीत भी हो जाती थी। अकस्मात उस लड़की ने अपनी माँ से कहा कि उसे भूख लगी है, और माँ ने जवाब में कहा कि, भूख के साथ ही उनका जन्म हुआ था, भूख को साथ लेकर वे जीते आये थे और मृत्यु का वरण करते समय भी उनकी साथी भूख ही होगी; यही उनका ललाटलेख था। यह बस एक तथ्य का वर्णन था; उसके स्वर में न उलाहना था, न क्रोध, न आशा। उस पथरीली राह पर हम नीचे उतरते रहे। यह कोई अवलोकनकर्ता नहीं था जो उन स्त्रियों के पीछे उनकी बातें सुनता हुआ, दयाभाव से विकल होता हुआ चल रहा था। वह प्रेम और दयाभाव के कारण उनका हिस्सा नहीं बना था; वह था ही नहीं। वह रहा ही नहीं था, केवल वे ही थीं। वे दोनों कोई अजनबी नहीं थीं जो उस पहाड़ पर मिली हों, वे उसी में थीं; उन लकड़ी के गट्ठरों को थामे रखने वाले हाथ उसी के थे; वह पसीना, वह थकान, शरीर से आने वाली वह गंध, वह भूख उनकी नहीं थी—जिनमें कोई सहभागी हो और दुख व्यक्त करे। समय और आकाश समाप्त हो चुके थे। हमारे मस्तिष्क में कोई विचार थे ही नहीं, थकान इतनी अधिक थी कि विचार करने की शक्ति ही नहीं बची थी; और यदि कोई विचार आया भी, तो वह केवल लकड़ी बेचना, भूख तृप्त करना, थोड़ा विश्राम करना और फिर नये सिरे से प्रारंभ करना—इतना ही था। उस पथरीली राह पर चलते हुए पैरों को कोई तकलीफ नहीं पेश आ रही थी, न ही सिर पर तपते सूर्य से कोई कष्ट था। हम बस दो ही थे—उस चिरपरिचित पहाड़ी से नीचे उतरते, नित्य की तरह उस कुएँ पर प्यास बुझाकर आगे बढ़ते और उस जाने-पहचाने निर्झर के सूखे अंचल को पार करने वाले—बस, हम केवल दो ही थे।

– 'कमेन्टरीज़ ऑन लिविंग, खंड दो' से

अनुवाद : इंदु टिकेकर

वह बस भीख माँगता था...

अभी प्रातःकाल से बहुत पहले का समय था, और धरती पर झाड़ियों और फूलों को छिपा लेने वाला हल्का सा कोहरा था। हर वृक्ष के चारों ओर भारी ओस ने आर्द्रता का एक घेरा बना रखा था। वृक्ष-समूह के पार्श्व भाग से सूर्य अभी-अभी ऊपर आ रहा था और वृक्ष अब चुप थे, क्योंकि सारे चहकने वाले पंछी दिन भर के लिए निकल चुके थे। हवाई जहाज के इंजन गरमाये जा रहे थे, और उनकी कर्णकठोर ध्वनि सुबह के वातावरण में व्याप्त थी; परंतु थोड़े ही समय में, विशाल महाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों के लिए वे उड़ जाएंगे, और नगर की सामान्य नित्यक्रम की ध्वनियों को छोड़कर, सब कुछ पुनः नीरव हो जाएगा।

मार्ग पर सुरीली आवाज़ वाला एक भिखारी गा रहा था, और गीत में, जो पीछे छूट गया उसके स्मरण का सुपरिचित भाव था। उसकी आवाज कर्कश नहीं बनी थी, और मार्ग के उस तरफ से आनेवाली बसों की खड़खड़ाहट और लोगों की पुकारों के मध्य वह आवाज़ सुखद एवं मोहक लग रही थी। वहाँ आसपास ही कहीं आप रहते होते, तो प्रतिदिन प्रातःकाल आपको उसकी आवाज़ सुनाई पड़ती। कितने ही भिखारी कुछ कौतुक करके दिखाते हैं, अथवा बंदर रखते हैं जो कोई कौतुक करते हैं; ये भिखारी जानकार होते हैं, दुनियादारी में चुस्त होते हैं, उनके चेहरे पर चालाकी और झट आने वाली मुस्कुराहट होती है। परंतु यह भिखारी एकदम अलग प्रकार का था। वह सीधा-सादा भिखारी था, उसके हाथ में लंबी लाठी और तन पर फटे-गंदे कपड़े रहते। उसमें कोई दिखावा नहीं था, न फुसलाकर अधिक पैसा ऐंठने के तरीके उसे आते थे। दूसरे भिखारी उससे अधिक भीख पा जाते थे, कारण कि लोगों को स्तुति प्रिय होती है, अच्छे नाम दिये जाना, आशीर्वाद पाना और समृद्धि की कामना का

व्यक्त किया जाना उन्हें पसंद होता है। किंतु यह भिखारी ऐसा कुछ नहीं करता था। वह बस भीख माँगता था, और आप यदि देते हैं तो वह सिर झुकाता और आगे निकल जाता, न कोई आडंबर होता, न हावभाव। उस पूरे लंबे, छायादार मार्ग पर वह चलता चला जाता, हमेशा लोगों को राह देता हुआ; मार्ग के अंत में वह दाहिनी ओर मुड़कर जरा सँकरा और अधिक नीरव पथ लेता, और पुनः गाना आरंभ करता, फिर घूमता हुआ अंत में उन छोटी गलियों में से एक में खो जाता। युवा ही था वह; कुछ तो था उसकी उपस्थिति में।

निश्चित समय पर हवाई जहाज रवाना हुआ और मज़े में शहर के ऊपर उड़ा; शहर जिसमें गुंबद थे, प्राचीन मकबरे थे, और हाल ही में निर्मित, आडंबरी, भद्दी इमारतों की लंबी पंक्तियाँ थीं। शहर के एक ओर नदी थी, घुमावदार और खुली, फीका नीला-हरा जल था उसका, और हवाई जहाज जैसे उसका अनुगमन करता रहा, अधिकतर दक्षिण-पूर्व की ओर जाते हुए। लगभग छः हजार फुट के स्तर पर हम स्थिर होकर चले और हमारे नीचे जो प्रदेश फैला था, वह असमान भूरे-हरे भूखंडों में तरतीब से बँटा था, और हर आदमी का स्वामित्व ज़मीन के उस छोटे से टुकड़े पर था। अनेक देहातों को सर्पिल गति से पीछे छोड़ती वह नदी बहती चली और इसमें से मानव-निर्मित सँकरी-सीधी नहरें निकल रही थीं जिन्हें खेतों को सींचना था। पूर्व की ओर सैकड़ों मील दूर बर्फाच्छादित पर्वतशृंखला दिखने लगी, अपनी गुलाबी आभा में स्वर्गीय, स्वप्निल थी वह। प्रारंभ में वह क्षितिज के ऊपर तिरती-सी दिखी और वे नुकीली चोटियों वाले, विराट आकार के पर्वत हैं इस पर विश्वास करना कठिन था। धरती की सतह पर से तो इतनी दूरी से उनके दर्शन संभव नहीं थे, परन्तु यहाँ की ऊँचाई से उन्हें देखा जा सकता था, और वे शानदार ढंग से सुरम्य लग रहे थे। उन पर से अपनी आँखें हटाने का मन नहीं होता था, उनकी रमणीयता और भव्यता की हलकी सी छटा भी चूक जाने का भय था। एक पर्वतश्रेणी के

स्थान पर धीरे-धीरे दूसरी आती रही, एक विराट शिखर की जगह दूसरा । उन्होंने उत्तर-पूर्व क्षितिज को व्याप्त किया हुआ था और दो घंटों से जारी हमारी उड़ान के पश्चात भी वे पर्वत मानो वहीं थे। सचमुच वे अविश्वसनीय थे : वह रंग, वह अनंतता और वह एकांत। आप सब कुछ भूल गये—यात्रीगण, कैप्टन का सवाल पूछना, और परिचारिकाओं का टिकट के लिए विनती करना। यह किसी बालक का खिलौने में खो जाना, किसी भिक्षु का अपनी गुफा में और संन्यासी का नदीतट पर मग्न हो रहना नहीं था। यह तो संपूर्ण अवधान की अवस्था थी जिसमें कोई विचलन, कोई भटकाव नहीं था; थी तो केवल धरती की सुरम्यता और महिमा। कोई साक्षी, कोई अवलोकनकर्ता था ही नहीं।

– 'कमेन्टरीज़ ऑन लिविंग, खंड तीन' से

अनुवाद : इंदु टिकेकर

पूर्णता में ही स्वतंत्रता होती है, न कि विचार के किसी प्रारूप की पुनरावृत्ति में, उसके दमन या आज्ञापालन में। पूर्णता तो खिलने और मिटने में ही है; और यदि मिटना नहीं हुआ, तो समझो खिलना हो ही नहीं पाया। जिसकी निरंतरता होती है, वह तो केवल समय में अवस्थित विचार मात्र है।

'कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक' से

कृष्णमूर्ति वीडियोज़ हिंदी सब-टाइटल के साथ

गत दो वर्षों से कृष्णमूर्ति वीडियोज़ की हिंदी सब-टाइटलिंग पर काम चल रहा है। कुछ एक वीडियोज़ की क्लिप भी बनायी गयी। कुछ अंशतः तो कुछ पूरे वीडियोज़ पर काम हुआ, कुछ अंशों के हिंदी सब-टाइटल्ज़ यू ट्यूब पर डाले गये जो कि हमारी भारतीय भाषाओं की वेबसाइट पर उपलब्ध भी हैं।

इस काम को करने के दौरान कई चुनौतियाँ भी रहीं, कभी सॉफ्टवेयर से संबंधित और कभी सही वीडियो सामग्री की समस्या। कुछ महीने काम करने के बाद आये हुए परिणाम को देखना, उस पर उपलब्ध लोगों से बात करना, सब-टाइटल्ड वीडियो देखना व साथ बैठकर दिखाना। जो सॉफ्टवेयर ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड में इस्तेमाल किया जा रहा है, उसे भी यहाँ इस्तेमाल किया किन्तु हिंदी भाषा देवनागरी के साथ काम करने में यह सॉफ्टवेयर उतना कारगर नहीं लगा जितनी कि उम्मीद थी। क्योंकि पहली चीज़ फान्ट की समस्या ही थी, उसके बाद यदि हम यूनीकोड फान्ट में तैयारी कर भी लें तो फिर बाकी प्रोसेसिंग जटिल ही थी। उस सॉफ्टवेयर से वीडियो तैयार करने में तकनीकी पक्ष में भी मुश्किलें ज़्यादा ही थीं।

तत्पश्चात तीन-चार और भी सॉफ्टवेयर ट्रायल हेतु प्रयोग में लाये गये। फिर एक बार श्रीमती अंजली काम्बे का, जो कि मराठी भाषा में सब-टाइटलिंग का काम देख रही हैं, 2011 में उत्तरकाशी रिट्रीट सेण्टर आना हुआ। उनके साथ ई-मेल आदि के माध्यम से संपर्क स्थापित हो चुका था और अब उत्तरकाशी रिट्रीट सेण्टर में उनके आने पर सब-टाइटलिंग के काम और उससे जुड़े अनुभव का अच्छा आदान-प्रदान हुआ। उन्होंने मराठी भाषा में किये गये सब-टाइटल के विषय में जानकारी दी। उनके चार दिन के प्रवास

के दौरान इस कार्य में उन्हें भी लगा कि देवनागरी फान्ट के साथ काम करने के लिए किसी और सॉफ्टवेयर की आवश्यकता है, जो कि अपेक्षित परिणाम लेकर आये।

गत वर्ष श्री विजय छाबड़ा जर्मनी से 'सब्लाइम' नामक एक अन्य सॉफ्टवेयर लेकर आये। सब्लाइम पर वहाँ कुछ कृष्णमूर्ति वीडियोज़ पर सब-टाइटलिंग का काम हो रहा था जो कि ब्रॉकवुड में अपेक्षित मानदंडों को भी पूरा कर पाने में सक्षम था। इस नये सॉफ्टवेयर में काम करना बाकी सॉफ्टवेयर्ज़ से अलग था। एक तो यह सॉफ्टवेयर कृतिदेव फान्ट में काम करने की सहूलियत दे रहा था, साथ ही लगा कि यह सब-टाइटलिंग के काम को और भी बढ़िया ढंग से करने में सहायक होगा। इस सॉफ्टवेयर पर कुछ समय काम करने के बाद कुछ सवाल सामने आये। इन्हीं सवालों को और उनके तकनीकी पक्ष को समझने के लिए अभी हाल ही में दिल्ली में एक सब-टाइटलिंग वर्कशाप का आयोजन किया गया। जर्मनी में इसी सॉफ्टवेयर पर कार्य करने वाले श्री बेर्न्ड महोदय ने 2013 के मार्च माह की 13 से 18 तारीख तक चले इस वर्कशाप में हमें सब्लाइम सॉफ्टवेयर पर बेहतर ढंग से काम करना बताया।

कुछ सवाल जो कि तकनीकी रूप से हल हुए उनमें से कुछ एक का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं :

- बेहतर क्वालिटी के लिए कौन सी फार्मेट में वीडियो फाइल सब्लाइम में इन्सर्ट की जाए।
- डी.वी.डी. वीडियो फाइल जो कि वी.ओ.बी. फाइल है उसे सब-टाइटलिंग कार्य के लिए कैसे तैयार करें।
- बिना मेन्यू के वीडियो फाइल प्राप्त करना।
- वीडियो में यदि श्री कृष्णमूर्ति के साथ अन्य लोग भी वार्ता में शामिल हैं तो उनके सब-टाइटल्ज़ को अलग रंग में कैसे दर्शाएं।

- किसी वीडियो का यदि कुछ भाग ही सब-टाइटल के लिए प्रयोग करना हो तो कैसे करें।
- स्पॉटिंग, टाइमलाइन आदि को फ्रेम-बाइ-फ्रेम ठीक करना।
- किस तरह दो-तीन या और भी भारतीय भाषाओं में सब-टाइटल तैयार किये जा सकते हैं।
- सब-टाइटल्ड वीडियो को किसी भी टी.वी. व प्लेयर पर दिखाये जाने हेतु तैयार करना।

इस वर्कशाप में यही कुछ मुख्य बिंदु रहे। कुल मिलाकर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अब कृष्णमूर्ति वीडियोज़ को हिंदी सब-टाइटल्ज़ के साथ समय-समय पर आपके समक्ष उपलब्ध कराना संभव होगा। इस कार्य को और भी अच्छे ढंग से करने के लिए प्रयास जारी हैं।

– *अरविंद शुक्ल*

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

आगामी प्रकाशन

जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी

मेरी लट्यन्ज़ कृत कृष्णमूर्ति की जीवनी का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद।

प्यार क्या है? अकेलापन क्या है?

बहुप्रयुक्त शब्द प्रेम तथा अकेलेपन के
निहितार्थों की प्रायोगिक मीमांसा

नये प्रकाशन

आज़ादी की खोज

'ऑन फ्रीडम' का यह सुरुचिपूर्ण हिंदी अनुवाद राजपाल एंड सन्ज़
द्वारा सद्यः प्रकाशित हुआ है।

कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

संस्कृति का प्रश्न

'थिंक ऑन दीज़ थिंग्ज़' का संशोधित हिंदी संस्करण।

सुखी वही जो कुछ नहीं

कृष्णमूर्ति द्वारा एक युवा मित्र के नाम लिखे गये पत्रों से उद्धृत
अंतर्दृष्टियों का यह संचयन दैनिक जीवन से जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश
डालता है।

प्रथम और अंतिम मुक्ति (द्विभाषी संस्करण)

एक संग्रहणीय पुस्तक। बाँये पृष्ठों पर मूल अंग्रेजी पाठ तथा दाँये पृष्ठों
पर उनका हिंदी अनुवाद दिया गया है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के
अध्ययन में एक भिन्न आयाम।

वर्ष में तीन बार प्रकाशित निःशुल्क न्यूज़-लैटर

स्वयं से संवाद

मंगाने के लिए अपना पता भेजें।

सूचनाओं तथा संपूर्ण पुस्तक सूची हेतु संपर्क करें-

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001
ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : विजय छाबड़ा